Research Discourse (ISSN 2277-2014) : An International Peer-reviewed Refereed Research Journal, **Published by :** SARDI, Varanasi, U.P. (INDIA)
Indexed by : IIJIF, I2OR, SJIF, **IIJ Impact Factor :** 8.002, Vol. XVI, No. I, January-March **2026,** Page No. : **111-113**
Received- 22/01/2026, Reviewed- 22/02/2026, Accepted- 23/02/2026

महाकवि कालिदास का आस्तिक्य दर्शन

प्रो0 (डॉ0) प्रीति राठौर*

*विभागाध्यक्षा–संस्कृत विभाग, डी0बी0एस0पी0जी0 कॉलेज, कानपुर, उ0प्र0

सारांश : *प्रस्तुत शोध पत्र महाकवि कालिदास का आस्तिक्य दर्शन के विशेष सन्दर्भ में सूक्ष्म अध्ययन करने का प्रयास किया गया है और उनकी प्रासंगिकता का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। कालिदास के शिव का स्वरुप विशद् रुप चित्रित किया गया है। कालिदास साहित्य में उपनिषद गीता और पुराणों की मान्यता का तो सम्मिश्रण है ही, वैदिक उपासना या यज्ञोपासना का भी अत्यन्त महत्व है। इस दृष्टि से यह शोध–पत्र निश्चित ही पूर्व शोध–पत्रों की पूरक और नये लोगों के लिए प्रेरणादायक सिद्ध होगी।*

मुख्य शब्द : *आस्तिक्य दर्शन, संस्कृत साहित्य, उपनिषत्काल, सांख्य दर्शन, वैदिक उपासना आदि।*

प्रस्तावना : अमहाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य कवि माने जाते हैं। भारत के अनेक श्रेष्ठ कवियों ने उनकी प्रशंसा में कुछ न कुछ अवश्य कहा है। उपमा कालिदाससस्य तो प्रसिद्ध ही है–

पुरा कवीनां गणना प्रसडे कनिष्ठिकाधिष्ठित–कालिदासः।
अद्यापि तत्तुल्य–कवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव।।''

संस्कृत साहित्य के इतिहासकारों ने कालिदास को शैव कहा है। उनके इस विश्वास का आधार उनके रचनाओं के आद्य मंगल श्लोक हैं। मालविकाग्निमित्र में जो, संम्भवतः उनका प्रथम नाटक है उन्होंने शिव को कृत्तिवासस् कान्ता–संमिश्रदेह, यतियों की भी पहुँच से बाहर, निरभिमानी तथा अष्टविग्रहों से जगत् को धारण करने वाला कहा है। वर्णन की यह प्रणाली उपनिषत्काल में ही मिलती है–

तजेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्धन्तिके।
तदनन्तरस्य सर्वस्व तदुसर्वस्यास्य ब्रह्मतः।।[1]

विक्रमोर्वशीयम् में शिव की महिमा को उन्होंने और स्पष्ट किया है। उपनिषद् ग्रन्थों में जिस पुरुष को पृथ्वी और आकाश को धारण करने वाला बताया गया है वे शिव ही हैं। ईश्वर शब्द का प्रयोग केवल उन्ही पर सार्थक होता है। ईश्वर नाम की अनन्य–विषयता का प्रतिपादन न रघुवंश में भी मिलता है। ''**रघुवंश के मंगलाचरण में 'कान्ता–संमिश्रदेहत्व**'' के माध्यम से पार्वती के साथ परमेश्वर की वन्दना है अकेले शिव की नहीं (जगत : पितरौ)।

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ।।[2]

अभिज्ञानशाकुन्तलम् की नान्दी पाठ में शिव की अष्ट मूर्तियों का विशद् रुप चित्रित किया गया है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु आकाश, सूर्य, चन्द्र और आत्मा में आठ शिव की प्रत्यक्ष मूर्तियाँ हैं। इन्हें देखकर उनके स्वरुप की कल्पना की जा सकती है। वास्तव में शिव और उनकी इन अष्टमूर्तियों में प्रकृति और पुरुष अर्थात शक्ति और शक्तिमान का भाव निहित है, क्योंकि ये अष्ट मूर्तियाँ सृष्टि उपादान भी हैं। शिव के इस अष्ट–विग्रह स्वरुप पर कालिदास की मुख्यतया आस्था थी। अभिज्ञान शाकुन्तलम् के मंगलाचरण में उन्होंने कहा है–

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रूतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्त विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टभिरीशः।।[3]

अष्टमूतियाँ स्वयं इस बात की साक्षी हैं कि इस सृष्टि रचना के पीछे स्रष्टा का कोई स्वार्थ निहित नहीं है। ये अष्ट मूर्तियॉ विश्व को उसी प्रकार धारण किये है जैसे बैल गाड़ी को ढोते हैं। जड़–पदार्थो का यह सहकार्य शिव के प्रभाव के कारण ही सम्भव है–

कलितान्योन्य–सामर्थ्यैः पृथिव्यादिभिरात्मभिः।
येनेदं ध्रियते विश्वं धुरैर्यानमिवाध्वनि।।[4]

कालिदास के शिव का स्वरुप ठीक वही नहीं है, जो पुराणों में वर्णित है। यह सत्य है कि उन्होंने कुमारसंम्भवम् में जो शिव का स्वरुप उपस्थित किया है वह विशुद्ध पौराणिक है किन्तु उनके शिव कुमारसम्भवीय शिव की सारी विशेषतायें लेकर भी उनसे कुछ अधिक हैं। कुमारसम्भवम् में शिव के गृहस्थ रुप के चित्रण के पीछे कवि का उद्देश्य भिन्न था। वे गृहस्थाश्रम का महत्व प्रतिपादित करना चाहते थे, इसलिये उन्होंने स्वयं ही कहा है–**'न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः।**' कालिदास के शिव ब्रह्म के पर्यायी हैं। सृष्टि के पूर्व वे केवलात्मा है जिसके विषय में ऐतरेय उपनिषद् में कहा गया–**''आत्मा व इदमेकएवाग्र आसीत् नान्यत् किंञ्चमपिषत्। स ईक्षत लोकान्नुसृजा''** (5–1)। ब्रह्मा के इस स्रष्टा रुप का नाम हुआ ब्रह्मा। कवि की दृष्टि में इस ब्रह्मा और शिव में कोई भेद नहीं है, इतना ही नहीं, कालिदास जी ने शिव को 'साक्षात्साक्षी विश्वस्य कर्मणाम् कहा है[5] और ब्रह्मा की स्तुति में शिव के स्वरुप को वर्णित किया है–

त्वामामनन्ति प्रकृतिं पुरुषार्थ–प्रवृर्तिनीम।
तद्दर्शिनमुदासीनं त्वामेव पुरुषं विदुः।।[6]

इस प्रकार शिव और ब्रह्मा के स्वरुप में भेद कहा रह गया ? किन्तु क्या वास्तव में यह ब्रह्मा की स्तुति है ? यह तो ब्रह्मा का वह स्वरुप है जिसमें केवल ब्रह्म को छोड़कर अन्य किसी पदार्थ की सत्ता ही स्वीकार नहीं की गयी है, जहाँ कर्ता, कारण और

कार्य तथा ज्ञाता, ज्ञेय तीनों एक बन जाते हैं तो यह एकेश्वरवाद नही अपितु एकतत्ववाद है। यह वह सांख्य दर्शन भी नहीं है जिसमें कहा गया है–

प्रकृतिं पश्यति पुरुषः प्रेक्षकवदवस्थितः स्वच्छः।[7]

सांख्य दर्शन में प्रकृति और पुरुष दोनों भिन्न–भिन्न है। वहॉ प्रकृति ही बद्ध होती है और वही मुक्त होती है पुरुष तो केवल **''साक्षी चेता केवलो निगुर्णश्च''** रहता है। सांख्य में कहा गया है–

तस्मान्न बध्यतेऽद्धा न मुच्यते नाऽपि संसरति कश्चित्।
संसरति बध्यते मुच्यते नानाश्रया प्रकृतिः।।[8]

जिसका समर्थन गीता में भी मिलता है–

प्रकृतेः क्रियमाणनि गुणैः कर्माणि सर्वशः
अहंकार–विमूठात्मा कर्ताहमिति मन्यते।।[9]

महाकवि कालिदास ने प्रकृति और पुरुष के ऊपर एक परमपुरुष को प्रतिष्ठित करके सांख्य दर्शन को भी आस्तिक बना दिया है और प्रकृति नर्तकी के रुप में केवल कठपुतली बनकर रह गयी है। सांख्य में कहा गया है कि–

रडस्य दडर्शयित्वा निवर्तते नर्तकी यथा नृत्यात्।
पुरुषस्य तथाऽऽत्मानं प्रकाश्य विनिवर्तते प्रकृतिः।।[10]
प्रकृतेः सुकुमारतरं न किञ्चदस्तीति ते मतिर्भवति।
या दृष्टाऽस्मीति पुनर्न दर्शनमुपैति पुरुषस्य।।[11]

किन्तु कालिदास जी ने ब्रहम को ही प्रकृति माना है। तीनों गुण उसी के भेद हैं–**''गुणत्रय–विभागाय पश्चाद् भेदमुपेयुष।''** इतना ही नहीं स्त्री–पुरुष तक उसी एक के दो विभाग हैं–

स्त्री–पुंसावात्मभागौ ते भिन्नमूर्तेः सिसृक्षया।
प्रसूतिमात्र सर्गस्य तावेव पितरौ स्मृतौ।।[12]

इस विषय में महाकवि कालिदास के विचार सांख्य दर्शन के विपरीत हैं। इसलिये जो विद्वान् कालिदास और ईश्वर कृष्ण को एक मानकर वृद्धावस्था में उन्हें शैव बना लेते हैं वे एक तो सांख्यकरिका को बचकानी कृति बतलाने के दोषी बनते हैं क्योंकि तब उन्हें उसकी रचना का समय मालविकाग्निमित्र से भी पूर्व स्वीकार करनी होगी। दूसरे वे कालिदास की शिवोपासना का मर्म भी नहीं समझ पाये हैं।

शिव और ब्रह्मा की ही स्तुति में नहीं विष्णु की स्तुति में भी कवि को अपनी ये मान्यतायें देखने को मिलती है–

नमो विश्वेसृजे पूर्वं विश्वं तदनु विभ्रते।
अथ विश्वस्य संहर्त्रे तुभ्यं त्रेधा स्थितात्मने।।
अभ्यास–निगृहीतेन मानसा हदयाश्रम्।
ज्योमिर्मयं विचिन्वन्ति योगिनस्त्वां विमुक्तये।।
शब्दादीन् विषयान् भोक्तुं चरितुं दुश्चर तपः
पर्याप्तोऽपि प्रजाः पातुमौदासीन्येन वर्तितुम्।।
अजस्य गुह्यता जन्म निरीहस्य क्रियावतः।
स्वप्नतो जागरुकस्य यथार्थ्यं वेद कस्तव।।[14]

उपर्युक्त श्लोकों पर उपनिषदों का प्रभाव स्पष्ट है जो **''अङ्गुष्ठमानः पुरुषः सर्वस्यास्य हृदि सन्निविष्टः''** मानते हैं। इस बात को कवि ने **''हृदयस्थमनासन्नम्''**–में व्यक्त किया है। **''ज्योतिर्मयं विचिन्वन्ति''** और **''तमेवभान्तमनुभाति सर्वम्''** इस उपनिषद् वाक्य में साम्य ही है, किन्तु **''पर्याप्तोऽसि प्रजाः पातुमौदासीन्येन वर्तितुम''** में जिस औदासीन्य की ओर संकेत है वह सांख्य का नहीं है। हॉ इन स्तुतियों में अनेको श्लोकों की शब्दाबली मनुस्मृति से अवश्य मेल खाती है। विष्णु की स्तुति पर गीता का प्रभाव है, इस बात को हम अस्वीकार नहीं कर सकते हैं।

वास्तव में कालिदास को शैव कहने से पहले हमें ''शैव'' शब्द का ताप्पर्य स्पष्ट रुप से समझ लेना चाहिये, क्योंकि अपने साम्प्रदायिक स्वरुप में यह शब्द पारिभाषिक है और इसकी परिभाषायें न केवल युग अपितु स्थान भेद से भी भिन्न–भिन्न हैं। ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी में भारत में शिव, स्कन्द, विशाख, वैश्वानर प्रजापति और सूर्य की पूजा प्रचलित थी। गुप्तकाल तक आते–आते अन्य देवों का स्थान गौण हो गया, किन्तु शिव का स्थान न केवल बना रहा अपितु उसमें वृद्धि हुई। वासुदेवों में बलराम का महत्व क्षीण हो गया। विष्णु का अपना स्वतः महत्व था। दूसरी ओर विजय, युद्ध और सोमपान के वैदिक देवता बज्रबाहु इन्द्र का महत्व कम हो गया। कालिदास के काव्यों में हम इन्द्र का कार्य सर्वत्र उनके मित्र पृथ्वीपालों को करते देखते हैं। शिव, विष्णु आदि की पूजा की सूक्ष्म विधियाँ बनी रही। सूर्य की पूजा भी होती रही। कालिदास ने इन युग सन्धियों के बीच से सार वस्तु को ग्रहण कर लिया। उन्होंने पूर्व वैदिककाल से शिव और इन्द्र तथा उत्तर वैदिक काल से विष्णु को लिया। गुणत्रय के आधार पर इन देवत्रयी को उन्होंने उपनिषदों के ब्रह्मा के साथ जोड़ दिया। इस प्रकार कालिदास का उपास्य बना त्रिमूर्ति ब्रह्मा मंगलाचरणों में शिव का जो उल्लेख मिलता है उसमें वर्णन तो विश्वरुप का भी है, नाम, संकेत या स्थूल चाहे जो भी है। शिव नाम से ब्रह्म की उपासना प्राचीन संस्कृत विद्वानों मे परम्परागत रही है और अब तक प्रचलित है।

कालिदास साहित्य में उपनिषद गीता और पुराणों की मान्यता का तो सम्मिश्रण है ही, वैदिक उपासना या यज्ञोपासना का भी अत्यन्त महत्व है। वे ''यथा विधिहुताग्नीनाम् को ही अस्तिक मानते है। मंगलाकार्यों में वे वैतानिक शान्त्युदक के विसर्जन में विश्वास रखते है–

''अहं तावद्वतानिकं शान्त्युदकमस्यै गौतमीहस्ते विसर्जयामि''।[15]
सायन्तने सवनकर्मणि सम्प्रवृत्तेवेदीं हुताशनवतीं परितः प्रयस्ता
छायाश्चन्ति बहुधा भयमाददानाः सन्ध्यापयोद–कपिशाः पिशिताशना।।[16]

उपर्युक्त श्लोकों में वैदिक और पौराणिक विचारधारा का तो संगम है ही, साथ ही कवि की त्रिकाल सवनों के प्रति आस्था भी ध्वनित है। दुष्यन्त आश्रमवासियों का स्वागत अग्निशरण में श्रौतविधि से करता है। शकुन्तला पतिगृह जाते समय 'सद्योहुताग्नि' की परिक्रमा करती है और महर्षि कण्व आशीर्वाद देते हैं–

अमीं वेदि परितः क्लृप्तधिष्ठायाः समिद्वन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः।
अपध्नन्तौ दुरितैः हत्यगन्धैर्वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु।।[17]

वैतान अग्नि की उपासना के प्रति कालिदास की आस्था उनकी वैदिक यज्ञ पद्धति के प्रति अटूत आस्था की प्रतीक है। ऐसा प्रतीत होता है कि याज्ञिक साधना कालिदास के समय विद्वानों, आश्रमों और राजपरिवारों तक सीमित रह गयी थी और त्रिमूर्ति की उपासना सामान्य परिवारों में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। इस पूजोपासना का लक्ष्य तामसी वृत्ति से ऊपर उठकर मोक्ष की प्राप्ति, किन्तु यह मोक्ष शंकराचार्य का 'विलीनीभाव' नहीं है। यह केवल पुनर्जन्म का अभाव है जिसे उपनिषदों ने 'न स पुनरावर्तते' कर संकेतित किया है और जिसके लिये वेद ने 'अमृत' शब्द का व्यवहार किया है–**''मृत्योर्मुञ्चीय नाऽमृतात''।** इसी की याचना कवि ने **''ममापि च क्षपयतु नीललोहितः पुनर्भवं परिगत–शक्तिरात्मभूः''** इन शब्दों से की है। कठोपनिषद् के ये मन्त्र इस स्थिति का वास्तविक आभास देते हैं–

स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति न तत्रत्वं न जरया विभेति।
उभे तीर्त्वाशनया पिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके।।[18]
तथा– ''स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्ते।''

इस प्रकार कालिदास की आस्तिकता वैदिक, औपनिषदिक और प्राचीन पौराणिक एवं निजी चिन्तन पद्धति का एक समन्वित रुप है। अतः स्वेताश्वतरोपनिषद में उनके विषय में कहा गया है–

स विष्वकृदविष्वविदात्मयोनिः
स काल–कालो गुणी सर्व विद्यः।
प्रधान क्षेत्रजपतिः गुणेषः
संसार मोक्षस्थितिबन्ध–हेतुः।।[19]

सन्दर्भ

1. ईशावास्योपनिषद्
2. रघुवंशम्मंगलाचरण / 1
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम–मंगलाचरण /
4. कुमारसंम्भवम–6–76
5. कुमारसंम्भवम–6–78
6. कुमारसंम्भवम–13
7. सांख्यकारिका–65
8. सांख्यकारिका–62
9. 9भगवद्गीता–3 / 27
10. सांख्यकारिका–59
11. सांख्यकारिका–61
12. कुमारसम्भवम्–2 / 6
13. कुमारसम्भवम्–10 / 17
14. कुमारसम्भवम्–10 / 23,24,25
15. अभिज्ञान शाकुन्तलम्–तृतीय अंक
16. अभिज्ञान शाकुन्तलम्–4 / 24
17. अभिज्ञान शाकुन्तलम्–4 / 8
18. कोपनिषद्–1 / 12
19. श्वेताश्वरोपनिषद्–6 / 16